

नागार्जुन और त्रिलोचन के काव्य में शोषित वर्ग की आवाज और सामाजिक यथार्थ

डॉ.जितेन्द्र गौतम

सहायक प्राध्यापक - हिंदी

शासकीय श्रीमंत माधवराव सिंधिया स्नातकोत्तर महाविद्यालय शिवपुरी (म.प्र.)

Received– 20 September - 2026

Accepted– 22 September - 2026

Published– 30 September-2026

Corresponding Author-

डॉ.जितेन्द्र गौतम

सहायक प्राध्यापक – हिंदी, शासकीय श्रीमंत माधवराव

सिंधिया स्नातकोत्तर महाविद्यालय शिवपुरी (म.प्र.)

DOI- <https://doi.org/10.67275/SU.2026.041509>

Funding Policy-

‘Shodh Utkarsh’ is an independent journal and receives no financial support or grant from any public, commercial, or not-for-profit organization.

वित्त पोषण नीति-

‘शोध उत्कर्ष’ एक स्वतंत्र पत्रिका है। इसे किसी भी सार्वजनिक, वाणिज्यिक या गैर-लाभकारी संगठन से कोई वित्तीय सहायता, अनुदान या फंडिंग प्राप्त नहीं होती है।

Copyright Notice -

© 2026 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC-BY 4.0).

कॉपीराइट सूचना-

© 2026 लेखक। यह कार्य क्रिएटिव कॉमन्स अ Attribution 4.0 इंटरनेशनल लाइसेंस (CC-BY 4.0) के अंतर्गत लाइसेंस प्राप्त है।



जनसामान्य की उपस्थिति केवल एक विषय के रूप में नहीं, बल्कि एक सक्रिय ऐतिहासिक शक्ति के रूप में दर्ज होने लगी। यह समझना अत्यंत आवश्यक है कि साहित्य में शोषित वर्ग की अभिव्यक्ति का तात्पर्य मात्र उसकी पीड़ा, दरिद्रता या अभावों का रुदन नहीं है। इसके विपरीत, इस अभिव्यक्ति में व्यवस्था के विरुद्ध तीखा प्रतिरोध, श्रम का आत्मसम्मान, जीवन-संघर्ष, अटूट उम्मीद और आमूल-चूल सामाजिक परिवर्तन की तीव्र आकांक्षा भी अभिन्न रूप से शामिल होती है। साहित्य और सामाजिक यथार्थ का संबंध कभी भी यांत्रिक नहीं होता; यह एक जीवंत और द्वंद्ववात्मक प्रक्रिया है जिसमें कवि अपने युग की अंतर्निहित विसंगतियों को पहचानकर उन्हें एक नई काव्यात्मक भाषा और शिल्प प्रदान करता है। आधुनिक हिन्दी कविता में, विशेष रूप से स्वाधीनता से पूर्व और उसके तुरंत बाद के दशकों में, किसान, मजदूर और सामान्य ग्रामीण जन की जो बढ़ती हुई उपस्थिति दिखाई देती है, वह तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक संकटों और राजनीतिक चेतना के प्रसार का सीधा परिणाम थी।

प्रगतिशील काव्यधारा ने कविता को कुलीनतावादी और वायवीय सौंदर्यशास्त्र के घेरे से बाहर निकालकर उसे खेत-खलिहानों, कारखानों और धूल-भरे रास्तों से जोड़ा। इस व्यापक और युगांतरकारी काव्य-परिदृश्य में नागार्जुन और त्रिलोचन का स्थान अद्वितीय और ऐतिहासिक महत्व का है। यद्यपि दोनों कवि मार्क्सवादी दर्शन और प्रगतिशील चेतना से गहरे प्रभावित थे तथा दोनों का ही मूल सरोकार शोषित जनसमुदाय की मुक्ति से था, तथापि उनके काव्य-शिल्प, भाषा और संवेदना के स्तर पर स्पष्ट और रचनात्मक भिन्नताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। दोनों कवियों के तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता इसलिए है क्योंकि यह अध्ययन हमें भारतीय ग्रामीण यथार्थ की बहुआयामी जटिलताओं को समझने की दृष्टि प्रदान करता है। नागार्जुन जहाँ भारतीय समाज की विसंगतियों पर सीधा, निर्मम और व्यंग्यात्मक प्रहार करते हैं, वहीं त्रिलोचन ग्रामीण जीवन की शांत लय, श्रम के सौंदर्य और मानवीय संबंधों की आत्मीयता के भीतर से प्रतिरोध का स्वर उत्पन्न करते हैं। इस शोध-पत्र की केंद्रीय स्थापना यह है कि नागार्जुन और त्रिलोचन दोनों शोषित तथा श्रमजीवी समाज के अप्रतिम कवि हैं, लेकिन नागार्जुन का स्वर अधिक मुखर, विद्रोही और तात्कालिक राजनीतिक हस्तक्षेप से युक्त है, जबकि त्रिलोचन का काव्य सामान्यतः आत्मीय, अनुभवपरक और गहरे सांस्कृतिक प्रतिरोध की शांत नदी के समान प्रवाहित होता है।

सारांश- हिन्दी साहित्य की प्रगतिशील काव्यधारा के दो प्रमुख स्तंभों—नागार्जुन और त्रिलोचन—के काव्य में शोषित वर्ग की आवाज और सामाजिक यथार्थ का विस्तृत तुलनात्मक, विश्लेषणात्मक और समाजशास्त्रीय अध्ययन किया गया है। आर्थिक विषमता, सामंती अवशेषों और नव-स्वाधीन राष्ट्र के मोहभंग से निर्मित होती है, जहाँ कृषक, मजदूर और उपेक्षित वर्ग निरंतर हाशिए पर धकेले जा रहे थे। दोनों कवि जनवादी है साथ ही उनके काव्य में किसान, भूमिहीन, ग्रामीण स्त्री और श्रमजीवी मनुष्य का जीवन-संघर्ष, काव्यात्मक शिल्प और संवेदना के साथ अभिव्यक्त हुआ है। अध्ययन-पद्धति के अंतर्गत वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक और तुलनात्मक विधाओं के साथ-साथ एक परिकल्पित कम्प्यूटेशनल रूपरेखा का भी उपयोग किया गया है। दोनों कवियों की जनपक्षधरता समान होने के बावजूद, नागार्जुन का स्वर जहाँ अधिक मुखर, व्यंग्यात्मक और राजनीतिक रूप से आक्रामक है, वहीं त्रिलोचन का काव्य शांत, आत्मीय, संवादपरक और मानवीय गरिमा को सहेजने वाला है। शोषित वर्ग और सामाजिक यथार्थ के चित्रण में यह भिन्नता उनके भाषिक प्रयोगों, बिंब-विधान और लोक-संवेदना में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। तुलनात्मक अध्ययन से यह प्रमुख निष्कर्ष प्राप्त होता है कि नागार्जुन की कविता व्यवस्था पर सीधा प्रहार करती है, जबकि त्रिलोचन की कविता शोषित मनुष्य के आत्मसम्मान और उसके श्रम की सांस्कृतिक महत्ता को रेखांकित करते हुए गहरे और स्थायी प्रतिरोध का निर्माण करती है।

बीज शब्द: नागार्जुन, त्रिलोचन, शोषित वर्ग, सामाजिक यथार्थ, जनपक्षधरता, प्रगतिशील कविता, लोकजीवन, श्रम-संस्कृति।

प्रस्तावना- भारतीय समाज में श्रमजीवी और वंचित वर्ग की ऐतिहासिक तथा सामाजिक स्थिति सदैव गहरे अंतर्विरोधों और संघर्षों से भरी रही है। हिन्दी कविता के इतिहास में, विशेषकर छायावाद के अवसान और प्रगतिवाद के उदय के साथ, साहित्य में

नागार्जुन को हिन्दी कविता में 'जनकवि' के रूप में विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त है। उनकी कविता जनता के जीवन से जन्म लेती है और उसी की भूख, बेकारी, शोषण, असुरक्षा तथा राजनीतिक उपेक्षा को स्वर प्रदान करती है। वे ग्रामीण जीवन को रोमानी दृष्टि से प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि उसकी कठोर वास्तविकताओं को पाठक के सामने रखते हैं।

अकाल की स्थिति में भूख केवल व्यक्ति को प्रभावित नहीं करती, बल्कि पूरा घरेलू परिवेश उसके प्रभाव से निष्प्राण हो जाता है। 'अकाल और उसके बाद' कविता की पंक्तियाँ इस सामूहिक अभाव को अत्यंत मार्मिकता से व्यक्त करती हैं—

**“कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास।”**

यहाँ चूल्हे का 'रोना' और चक्की का 'उदास' रहना मानवीकरण के प्रभावशाली उदाहरण हैं। कवि ने भूख का कोई अमूर्त विवरण प्रस्तुत नहीं किया; उसने उन वस्तुओं को केंद्र में रखा है जिनका संबंध सीधे सामान्य परिवार की रोटी से है। कानी कुतिया, छिपकली और चूहे तक अकाल से प्रभावित दिखाई देते हैं। इस प्रकार अकाल किसी एक मनुष्य की नहीं, बल्कि समूचे जीवन-जगत की त्रासदी बन जाता है।

नागार्जुन की कविता शोषणकारी राजनीति और सत्ता के अवसरवादी चरित्र पर भी तीखा प्रहार करती है। उनकी प्रसिद्ध कविता में यह व्यंग्यात्मक स्वर दिखाई देता है—

**“आओ रानी, हम ढोएंगे पालकी,
यही हुई है राय जवाहरलाल की।”**

इन पंक्तियों में औपनिवेशिक मानसिकता पर सीधा व्यंग्य किया गया है। राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद भी सत्ता का एक हिस्सा राजसी प्रदर्शन और औपनिवेशिक संस्कारों से मुक्त नहीं हो पाया था। 'हम ढोएंगे पालकी' में उपस्थित 'हम' उस सामान्य जनता का प्रतीक है, जिसके श्रम पर सत्ता का वैभव खड़ा होता है। सहज लोकभाषा के कारण यह व्यंग्य अधिक तीखा और प्रभावशाली बन गया है। नागार्जुन सामान्य श्रमिक के शरीर पर अंकित श्रम के चिह्नों को भी काव्यात्मक गरिमा प्रदान करते हैं—

**“खूब गए
दूधिया निगाहों में
फटी बिवाई वाले खुरदरे पैर।”**

'खुरदरे पैर' श्रमिक जीवन के संघर्ष, अभाव और निरंतर परिश्रम के प्रमाण हैं। परंपरागत सौन्दर्य-दृष्टि जिन पैरों को असुन्दर मान सकती है, नागार्जुन उन्हीं में श्रम का सौन्दर्य खोजते हैं। 'दूधिया निगाहों' और 'खुरदरे पैर' का विरोधी बिंब श्रमिक के प्रति कवि की गहरी आत्मीयता को प्रकट करता है। शिक्षा-व्यवस्था की दुर्दशा का चित्रण करते हुए नागार्जुन लिखते हैं—

**“घुन खाए शहतीरों पर की बारहखड़ी विधाता बाँचे,
फटी भीत है, छत चूती है, आले पर बिसतुइया नाचे।”**

यहाँ जर्जर भवन केवल विद्यालय की भौतिक स्थिति का चित्र नहीं है; वह उपेक्षित ग्रामीण शिक्षा-व्यवस्था का प्रतीक बन जाता है। अभावग्रस्त शिक्षक और असुविधाओं के बीच पढ़ते बच्चे उस व्यवस्था की वास्तविकता सामने लाते हैं, जिसमें शिक्षा की घोषणाएँ तो बहुत हैं, लेकिन मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं। 'प्रेत का बयान' में कवि भूख, बीमारी और प्रशासनिक असंवेदनशीलता के संबंध को व्यंग्यात्मक ढंग से उद्घाटित करते हैं—

“ओ रे प्रेत!

**कड़ककर बोले नरक के मालिक यमराज—
सच-सच बतला, कैसे मरा तू?”**

यह प्रश्न धीरे-धीरे पूरी व्यवस्था से किया गया प्रश्न बन जाता है। व्यक्ति की मृत्यु के कारणों की खोज करते हुए कविता गरीबी, भुखमरी, बीमारी और सरकारी उपेक्षा की परतें खोलती है। नागार्जुन का व्यंग्य यहाँ केवल हास्य उत्पन्न नहीं करता, बल्कि

सामाजिक विडंबना की पहचान कराता है। उनकी राजनीतिक कविताओं में अवसरवाद पर भी तीखा प्रहार मिलता है—

**“सपनों में भी सच न बोलना, वरना पकड़े जाओगे,
भैया, लखनऊ-दिल्ली पहुँचे, मेवा-मिसरी पाओगे।”**

इन पंक्तियों में सत्ता प्राप्त करने के लिए सत्य, नैतिकता और जनहित से समझौता करने वाली मानसिकता का चित्रण है। 'लखनऊ-दिल्ली' राजनीतिक सत्ता के केंद्रों के प्रतीक हैं, जबकि 'मेवा-मिसरी' सत्ता से प्राप्त होने वाले निजी लाभ को संकेतित करती है।

त्रिलोचन के काव्य में आत्मीयता, श्रम और मानवीय गरिमा-त्रिलोचन का काव्य-संसार नागार्जुन से भिन्न होते हुए भी समान रूप से जनपक्षधर है। वे ग्रामीण जीवन को बाहर से देखने वाले पर्यवेक्षक की तरह नहीं, बल्कि उसके सहभागी के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनके यहाँ प्रतिरोध का स्वर अपेक्षाकृत शांत है, परंतु वह मनुष्य की गरिमा, श्रम और सामूहिकता को स्थापित करता है। त्रिलोचन मनुष्य के सौन्दर्यबोध को जीवन की समग्रता से जोड़ते हैं—

**“मानव का सारा सौन्दर्यबोध जब विकास करता है
तब इनका अपना क्या योगदान रहता है—**

आँखें ही इसे देख सकती हैं,

में उसी समग्रता को देखने का आदी हूँ।”

इन पंक्तियों में कवि खंडित दृष्टि के स्थान पर समग्र जीवन-दृष्टि की आवश्यकता प्रतिपादित करता है। मनुष्य और समाज को किसी एक वर्ग, घटना अथवा परिस्थिति से नहीं समझा जा सकता। त्रिलोचन का सौन्दर्यबोध जीवन, श्रम, प्रकृति और मानवीय संबंधों की संयुक्त उपस्थिति से निर्मित होता है। श्रमिक के प्रति उनका सम्मान निम्न पंक्तियों में विशेष रूप से व्यक्त हुआ है—

“मानव की सभ्यता

तुम्हारे ही खुरदरे हाथों में नया रूप पाती है।”

'खुरदरे हाथ' यहाँ श्रमिक की पहचान हैं। सभ्यता का निर्माण राजाओं अथवा सत्ताधारियों से नहीं, बल्कि श्रम करने वाले सामान्य मनुष्यों से होता है। कवि श्रम को केवल जीविका का साधन नहीं मानता; वह उसे सभ्यता के निर्माण और भविष्य के सामाजिक परिवर्तन का आधार स्वीकार करता है। त्रिलोचन की कविता सामान्य मनुष्य के साथ प्रत्यक्ष संवाद स्थापित करती है—

**“मैं तुमसे, तुम्हीं से बात किया करता हूँ
और यह बात मेरी कविता है।”**

इन पंक्तियों में 'तुम' सामान्य जन का प्रतिनिधि है। कवि उसके विषय में दूर से बात करने के बजाय उसी से संवाद करता है। इसीलिए त्रिलोचन की कविता में कृत्रिम बौद्धिकता के स्थान पर आत्मीयता, बोलचाल और जीवनानुभव की सहजता मिलती है। व्यक्ति और समाज के संबंध पर विचार करते हुए त्रिलोचन लिखते हैं—

**“व्यक्ति ही तो मूल है यहाँ-वहाँ जो कुछ है,
लेकिन व्यक्ति कितना असहाय है अकेले में।”**

इन पंक्तियों में व्यक्ति की महत्ता और उसकी सामाजिक निर्भरता दोनों स्वीकार की गई हैं। व्यक्ति समाज की आधारभूत इकाई है, परंतु सामूहिक सहयोग के बिना वह असहाय हो जाता है। यह दृष्टि त्रिलोचन की जनपक्षधरता को मानवीय और समाजपरक आधार प्रदान करती है। त्रिलोचन की सामाजिक चेतना केवल मनुष्य तक सीमित नहीं है। वह प्रकृति और पर्यावरण की रक्षा से भी जुड़ी है—

**“इस पृथ्वी की रक्षा मानव का अपना कर्तव्य है,
इसकी वनस्पतियाँ, चिड़ियाँ और जीव-जंतु
उसके सहयात्री हैं।”**

यहाँ प्रकृति को मनुष्य के उपभोग की वस्तु न मानकर उसकी सहयात्री स्वीकार किया गया है। वनस्पतियों, पक्षियों, जीव-जंतुओं, जलवायु और आकाश की रक्षा वस्तुतः मानवता की रक्षा है।

इस दृष्टि से त्रिलोचन की कविता सामाजिक यथार्थ के साथ पर्यावरणीय उत्तरदायित्व को भी रेखांकित करती है। प्रकृति और उत्तराधिकार की भावना को व्यक्त करते हुए कवि लिखते हैं—

“सुरभि हमारी यह, हमें बड़ी प्यारी है,
इसको संभालकर जहाँ जाना, ले जाना,
इसे तुम्हें सौंपता हूँ।”¹²

‘सुरभि’ यहाँ जीवन की सुगंध, प्रकृति और सांस्कृतिक विरासत का व्यापक प्रतीक है। कवि वर्तमान पीढ़ी को इसे सुरक्षित रखने और अगली पीढ़ी तक पहुँचाने का दायित्व सौंपता है।

दोनों कवियों की जनपक्षधरता का तुलनात्मक स्वरूप- नागार्जुन और त्रिलोचन दोनों की कविता का केंद्र सामान्य मनुष्य है, किंतु उनकी अभिव्यक्ति-पद्धति भिन्न है। नागार्जुन के यहाँ व्यंग्य, प्रत्यक्ष प्रश्न, राजनीतिक आक्रोश और व्यवस्था-विरोध प्रमुख हैं। इसके विपरीत त्रिलोचन संवाद, आत्मीयता, श्रम की प्रतिष्ठा तथा मानवीय संबंधों के माध्यम से प्रतिरोध का निर्माण करते हैं। नागार्जुन का ‘चूल्हा’, ‘चक्की’, ‘पालकी’, ‘खुरदरे पैर’ और जर्जर विद्यालय सामाजिक विषमता को दृश्य रूप देते हैं। त्रिलोचन के ‘खुरदरे हाथ’, ‘असहाय व्यक्ति’, ‘सहयात्री जीव-जंतु’ और ‘सुरभि’ श्रम, सामूहिकता तथा जीवन की समग्रता को व्यक्त करते हैं। इस प्रकार नागार्जुन की कविता व्यवस्था से प्रश्न करती है, जबकि त्रिलोचन की कविता सामान्य मनुष्य की गरिमा को स्थापित करती है। दोनों की काव्य-दृष्टियाँ मिलकर हिन्दी की प्रगतिशील कविता को व्यापक सामाजिक और मानवीय आधार प्रदान करती हैं।

काव्यात्मक विश्लेषण: सामाजिक यथार्थ और शोषित वर्ग- दोनों कवियों की जनपक्षधरता का आकलन करने के लिए उनकी कविताओं में शोषित वर्ग की उपस्थिति, उनकी भाषा, शिल्प, व्यंग्य और लोकधर्मिता का तुलनात्मक और विस्तृत पाठ-विश्लेषण अत्यंत आवश्यक है। इस खंड में हम नागार्जुन और त्रिलोचन के काव्य में अभिव्यक्त किसान, मजदूर, ग्रामीण स्त्री और सामान्य जन के जीवन-संघर्षों का गहन विश्लेषण करेंगे।

नागार्जुन के काव्य में प्रतिरोधी चेतना और शोषित वर्ग की आवाज- नागार्जुन को हिन्दी कविता में जनकवि के रूप में जाना जाता है, क्योंकि उनका काव्य सीधे जनता के बीच से जन्म लेता है और उसी के संघर्षों को स्वर देता है। उनके काव्य में कृषक जीवन, खेती, भूमि का अभाव, बढ़ता ऋण, भयानक अकाल और ग्रामीण समाज के कठोर संघर्ष अत्यंत यथार्थवादी रूप में उभरते हैं। नागार्जुन ग्रामीण जीवन को किसी रोमानी या छायावादी दृष्टि से नहीं देखते; वे गांव की धूल, पसीने, कीचड़ और वहाँ व्याप्त भीषण आर्थिक विसंगतियों को पूरी निर्ममता के साथ उघाड़ते हैं। उनके यहाँ किसान और मजदूर केवल करुणा या दया के पात्र नहीं हैं, अपितु वे एक सक्रिय सामाजिक व्यक्तित्व धारण करते हैं, जो अपनी दुर्दशा पर प्रश्न करता है और व्यवस्था से टकराने का साहस रखता है।

नागार्जुन की कविता में भूख, अभाव और आर्थिक विषमता का चित्रण अत्यंत मार्मिक और देहलाने वाला है। वे भूख को केवल एक जैविक पीड़ा के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था की चरम विफलता के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण के लिए, अकाल के पश्चात के दृश्यों का उनका चित्रण केवल घरों में पसरे सन्नाटे और भुखमरी का वर्णन नहीं है, बल्कि वह उस अमानवीय व्यवस्था पर एक करारा प्रहार है जो अन्नदाता को ही अन्न से वंचित कर देती है। नागार्जुन की राजनीतिक चेतना इतनी प्रखर है कि वे सत्ता-विरोध को अपनी कविता का मूल स्वर बना लेते हैं। शासन, भ्रष्ट राजनीतिक नेतृत्व, संवेदनहीन नौकरशाही, और समाज में व्याप्त विशेषाधिकारों के प्रति उनका आलोचनात्मक रुख बेहद आक्रामक और मुखर है। नागार्जुन का व्यंग्य केवल बौद्धिक हास्य उत्पन्न नहीं करता; वह एक तीक्ष्ण अस्त्र है जिसका प्रयोग वे व्यवस्था के पाखंड को छिन्न-भिन्न करने के लिए करते हैं। उनकी लोकधर्मिता इसी बात में निहित है कि वे ठेठ

देशज शब्दों, मुहावरों और गालियों तक का उपयोग करके अपनी भाषा को उस शोषित मनुष्य की वास्तविक भाषा बना देते हैं, जो सदियों से मौन था।

त्रिलोचन के काव्य में आत्मीयता, श्रम और मानवीय गरिमा- त्रिलोचन का काव्य-संसार नागार्जुन से भिन्न एक अलग ही धरातल पर निर्मित होता है। त्रिलोचन ग्रामीण समाज को बाहर खड़े होकर देखने वाले किसी पर्यवेक्षक या राजनीतिक विश्लेषक की तरह नहीं, बल्कि उस समाज के भीतर के एक सहज सहभागी के रूप में देखते हैं। उनकी कविताओं में ग्रामीण जीवन की आत्मीय पहचान अत्यंत गहराई के साथ उभरती है। त्रिलोचन के यहाँ श्रम का अत्यंत उदात्त और गरिमामय चित्रण मिलता है। उनके काव्य में किसान, मजदूर, पनभरी, छोटे कामगार और अपने जीवन-संघर्ष में जुटे हुए सामान्य लोग अत्यंत सहजता के साथ उपस्थित होते हैं। त्रिलोचन यह स्थापित करते हैं कि श्रम केवल शोषण का कारण नहीं है, बल्कि वह मनुष्य की पहचान, उसकी ऊर्जा और उसके आत्मसम्मान का मूल स्रोत भी है।

त्रिलोचन के काव्य में गरीबी अथवा अभाव का चित्रण करते समय सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वहाँ मानवीय गरिमा सदैव सुरक्षित रहती है। वे अपने पात्रों को नागार्जुन की भांति उग्र विद्रोही नहीं बनाते, किंतु उन्हें दया के निष्क्रिय विषय के रूप में भी प्रस्तुत नहीं करते। त्रिलोचन के पात्र अपने अभावों के बीच भी प्रेम करते हैं, प्रकृति के साथ संवाद करते हैं, और अपने मानवीय संबंधों को जीवित रखते हैं। यह उनके गहरे और शांत प्रतिरोध का प्रतीक है। लोकभाषा के संदर्भ में, त्रिलोचन ने अवधी, बोलचाल की हिन्दी और ग्रामीण शब्दावली का जो प्रयोग किया है, वह मात्र एक शैलीगत प्रयोग नहीं है। यह जनसामान्य के जीवनानुभव को उसी की अपनी लय और श्वास में अभिव्यक्त करने का एक माध्यम है। त्रिलोचन का प्रतिरोध नागार्जुन की तरह प्रत्यक्ष और तीखा न होकर अनुभव, करुणा, संवाद और मनुष्य की अजेय जिजीविषा के माध्यम से व्यक्त होता है। त्रिलोचन की कविता यह प्रमाणित करती है कि धीमी आवाज़ में कही गई बात भी व्यवस्था के विरुद्ध एक सशक्त गवाही हो सकती है।

स्त्री, श्रम और सामाजिक उपेक्षा का तुलनात्मक परिदृश्य- श्रमशील तथा ग्रामीण स्त्री की उपस्थिति दोनों कवियों के काव्य में एक अत्यंत महत्वपूर्ण विमर्श का निर्माण करती है। नागार्जुन और त्रिलोचन दोनों ही स्त्री को केवल अभाव, पीड़ा या रुढ़िवादी सौंदर्य के प्रतीक के रूप में नहीं देखते। वे स्त्री को एक श्रमशील इकाई, एक संघर्षरत माँ, पत्नी और स्वतंत्र अस्तित्व वाली मानवी के रूप में पहचानते हैं। नागार्जुन के यहाँ ग्रामीण स्त्री की यातना और उसका संघर्ष सीधे तौर पर व्यवस्था की क्रूरता से जुड़ जाता है। उनकी कविताओं में स्त्री अपने हक के लिए लड़ती हुई, अभावों से जूझती हुई और कई बार अपने आक्रोश को मुखर करती हुई दिखाई देती है।

दूसरी ओर, त्रिलोचन के काव्य में स्त्री का चित्रण अधिक आत्मीय, घरेलू और स्नेहपूर्ण है। ‘चंपा’ जैसी उनकी कविताएं यह दर्शाती हैं कि ग्रामीण स्त्री किस प्रकार साक्षरता से दूर रखकर हाशिए पर धकेल दी जाती है, फिर भी वह अपने तर्क, अपने भोलेपन और अपनी पारिवारिक चिंता के माध्यम से एक अपना स्वतंत्र स्वर रखती है। स्त्री के पारिवारिक-सामाजिक योगदान को त्रिलोचन बड़ी श्रद्धा और सम्मान के साथ देखते हैं। यद्यपि समकालीन स्त्री-विमर्श की अत्यंत उग्र कसौटियों पर दोनों कवियों की दृष्टि में कुछ सीमाएँ खोजी जा सकती हैं, जहाँ स्त्री अंततः एक पुरुष-निर्मित व्यवस्था के भीतर ही अपने अस्तित्व को तलाशती नजर आती है, फिर भी अपने युग के संदर्भ में दोनों कवियों ने स्त्री को जो सक्रिय और मानवीय रूप प्रदान किया, वह निस्संदेह अत्यंत क्रांतिकारी और प्रगतिशील था।

भाषा, लोकधर्मिता और काव्य-शिल्प का अंतर्संबंध- भाषा और शिल्प के स्तर पर नागार्जुन और त्रिलोचन का काव्य-संसार अपनी

-अपनी विशिष्टताओं के साथ अत्यंत समृद्ध है। नागार्जुन की काव्यभाषा में व्यंग्य, विडंबना, मुहावरे, लोकोक्तियाँ और ठेठ ग्रामीण बिंबों की प्रधानता है। वे प्रायः मुक्त छंद का प्रयोग करते हैं और उनकी भाषा में एक ऐसी कथात्मकता एवं संवादधर्मिता होती है जो श्रोता या पाठक को सीधे आंदोलित करती है। नागार्जुन की भाषा अभिधात्मक लगती है, लेकिन उस अभिधा के भीतर एक गहरा राजनीतिक और कलात्मक अर्थ छिपा होता है। उनका तीक्ष्ण व्यंग्य उनके काव्य की सबसे बड़ी पहचान है, जो शोषित वर्ग के भीतर सोई हुई चेतना को जगाने का कार्य करता है।

इसके विपरीत, त्रिलोचन की भाषा में एक अद्भुत ठहराव, करुणा और आत्मीयता है। त्रिलोचन ने हिन्दी कविता में सॉनेट (चतुर्दशपदी) जैसे पाश्चात्य काव्यरूप का प्रयोग किया और उसे भारतीय ग्रामीण जीवन की लय के साथ इतनी सहजता से गूँथ दिया कि वह एकदम स्वदेशी प्रतीत होने लगा। उनके यहाँ ग्रामीण बिंब और प्रतीक बहुत ही कोमल, जीवनोपयोगी और प्रकृति से जुड़े हुए होते हैं। त्रिलोचन की सरल भाषा में कलात्मकता का अभाव नहीं है, बल्कि वह सहजता की चरम उपलब्धि है। जहाँ नागार्जुन की कविता में आक्रोश की आग है, वहीं त्रिलोचन की कविता में जीवन के सत्य की लौ है। दोनों कवियों की सरल अभिव्यक्ति के भीतर एक सक्रिय वैचारिक और सौन्दर्यात्मक संरचना मौजूद है, जो शोषित वर्ग के यथार्थ को पूरी प्रामाणिकता के साथ पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करती है। दोनों के काव्य में करुणा कभी भी निष्क्रिय भावुकता में परिवर्तित नहीं होती; वह सामाजिक अन्याय की पहचान, मनुष्य के प्रति गहरी आत्मीयता और एक बेहतर दुनिया की आकांक्षा से जुड़कर एक सक्रिय शक्ति बन जाती है।

निष्कर्ष- निष्कर्षतः, यह शोध-पत्र इस तथ्य को दृढ़ता से स्थापित करता है कि नागार्जुन और त्रिलोचन हिन्दी के प्रगतिशील काव्य-मंच के दो ऐसे अद्वितीय स्वर हैं, जिन्होंने शोषित, वंचित और श्रमजीवी समाज को साहित्य के केंद्र में प्रतिष्ठित कर एक ऐतिहासिक कार्य किया है। दोनों कवियों की कविताओं के विश्लेषणात्मक और तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि उनके काव्य में सामाजिक यथार्थ केवल एक बाह्य चित्रण नहीं है, बल्कि वह जनसामान्य की पीड़ा, उनके अथक श्रम, और व्यवस्था के विरुद्ध उनके प्रतिरोध का जीवंत दस्तावेज है। नागार्जुन का काव्य जहाँ अपने तीक्ष्ण व्यंग्य, राजनीतिक मुखरता और प्रत्यक्ष हस्तक्षेप के माध्यम से शोषित वर्ग को एक विद्रोही और उग्र आवाज प्रदान करता है, वहीं त्रिलोचन का काव्य अपनी आत्मीयता, संवादात्मकता और करुणा के माध्यम से उसी शोषित वर्ग की मानवीय गरिमा, उसके आत्मसम्मान और उसके श्रम की सांस्कृतिक महत्ता को रेखांकित करता है। अध्ययन की पद्धति और विभिन्न आलोचनात्मक दृष्टिकोणों ने यह प्रमाणित किया है कि सरल और लोकधर्मी भाषा का अर्थ कलात्मकता का अभाव नहीं होता; इसके विपरीत, यह शोषित मनुष्य के वास्तविक जीवनानुभव को बिना किसी बौद्धिक आवरण के प्रस्तुत करने की सबसे सशक्त युक्ति है। यद्यपि समकालीन विमर्शों के आलोक में इन कवियों की दृष्टि में कुछ सीमाएँ और वैचारिक अंतराल देखे जा सकते हैं, तथापि जनसामान्य के प्रति उनकी गहरी प्रतिबद्धता, जीवनानुभव की प्रामाणिकता और शोषण के विरुद्ध उनकी प्रतिरोधी चेतना निर्विवाद रूप से महान है। वर्तमान समय में, जब सामाजिक और आर्थिक विषमताएँ नए-नए रूप धारण कर रही हैं, सत्ता और जनता के बीच की दूरियाँ बढ़ रही हैं, तब नागार्जुन की प्रखरता और त्रिलोचन की आत्मीयता दोनों ही समान रूप से प्रासंगिक हो जाती हैं। शोषित वर्ग की आवाज को बुलंद करने और सामाजिक यथार्थ को उसके समग्र मानवीय रूप में प्रस्तुत करने का जो मार्ग इन दोनों कवियों ने प्रशस्त किया, वह आज भी हिन्दी

साहित्य और समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए एक अमूल्य धरोहर और निरंतर प्रेरणा का स्रोत है। इस प्रकार, इन कवियों की काव्य दृष्टि सामाजिक यथार्थ और मानवीय अनुभव को संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करते हुए, समाजशास्त्रीय विमर्श के लिए नई संभावनाएँ खोलती है।

संदर्भ सूची-

1. पुस्तक नागार्जुन रचना संचयन (पृष्ठ 100) संपादक : राजेश जोशी रचनाकार : नागार्जुन प्रकाशन : साहित्य अकादेमी संस्करण : 2017
2. पुस्तक : नागार्जुन : प्रतिनिधि कविताएँ (पृष्ठ 101) रचनाकार : नागार्जुन प्रकाशन : राजकमल प्रकाशन संस्करण : 2007
3. <https://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%96%E0%A5%81%E0%A4%B0%E0%A4%A6%E0%A4%B0%E0%A5%87%E0%A4%AA%E0%A5%88%E0%A4%B0/%E0%A4%A8%E0%A4%BE%E0%A4%97%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%9C%E0%A5%81%E0%A4%A8>
4. <https://tehelkahindi.com/%E0%A4%AE%E0%A4%BE%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%9F%E0%A4%B0/>
5. <https://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%AA%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A5%87%E0%A4%A4%E0%A4%95%E0%A4%BE%E0%A4%AC%E0%A4%AF%E0%A4%BE%E0%A4%A8/%E0%A4%A8%E0%A4%BE%E0%A4%97%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%9C%E0%A5%81%E0%A4%A8>
6. <https://kavitakosh.org/kk/%E0%A4%B8%E0%A4%9A%E0%A4%A8%E0%A4%AC%E0%A5%8B%E0%A4%B2%E0%A4%A8%E0%A4%BE/%E0%A4%A8%E0%A4%BE%E0%A4%97%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%9C%E0%A5%81%E0%A4%A8>
7. त्रिलोचन, ताप के ताए हुए दिन, गाजियाबाद: संभावना प्रकाशन, संस्करणानुसार, पृ. 62।
8. पाण्डेय, संभाष चन्द्र, "त्रिलोचन शास्त्री के साहित्य में मानवीयता की तलाश", विश्व हिन्दी जन चौपाल, 6 अक्टूबर 2017
9. त्रिलोचन, बात मेरी कविता: त्रिलोचन की चुनी हुई अपनी कविताएँ, सम्पादक श्याम सुशील, नई दिल्ली: किताबघर प्रकाशन, 2009,
10. त्रिलोचन, प्रतिनिधि कविताएँ, सम्पादक केदारनाथ सिंह, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2001, पृ. 34
11. त्रिलोचन, "मैं-तुम", प्रतिनिधि कविताएँ, सम्पादक केदारनाथ सिंह, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2001, पृ. 34
12. त्रिलोचन, "तुम्हें सौंपता हूँ", तुम्हें सौंपता हूँ, नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करणानुसार, पृ. 15।